मधुप

खोया चेहरा

कवि - परिचय

नाम : पृथ्वीनाथ मधुप। जन्म : कश्मीर, अप्रेल १९३४। शिक्षा : पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम० ए०।

व्यवसाय : अध्यापन : महिला महाविद्यालय श्रीनगर; श्री प्रताप कॉलेज, श्रीनगर; इस्लामिया कॉलेज, श्रीनगर तथा बनहॉल श्रीनगर सम्प्रति : स्नातकोत्तर हिन्दी अध्यापक केन्द्रीय विद्यालय, श्रीनगर।

प्रकाशन : १. कवि-श्रीमाला; परमानन्द २. कश्मीरी स्वयं शिक्षक। ३. कश्मीरी बोलचाल। ४. कश्मीरी भाषा और साहित्य : एक परिचय (यन्त्रस्थ)। ५. वे मुखरक्षण।

६. गल्प-सौरभ तथा ७. नीलजा (सम्पादित)। रजत जयन्ती ग्रंथ, सुकविकुंज बिहारी स्मृति ग्रंथ, हिन्दी कवियों की रुबाइयाँ, प्रतिनिधि रुबाइयाँ, गूंजते स्वर, गज़लांजलि, गर्जना, एक अपरिचित आकाश, योजना, शीराज़ा, कादम्बिनी, नवनीत, राष्ट्र-धर्म, हमारा साहित्य, पद्यांजलि तथा अन्य गद्य-पद्य संकलनों एवं पत्र-पत्रिकाओं में अनेक गद्य-पद्य रचनाएँ प्रकाशित।

प्रिय बन्धु
श्री आनन्द जी को
सस्नेह
[signature] 10/6/72.

M. P. SADHA AMEPHALLA
LIBRARY
No. ....
Date ....

नाम : पृथ
अप्रेल १९३४
से हिन्दी स

व्यवसाय :
श्रीनगर; श्र
मिया कॉलेज
सम्प्रति : स
विद्यालय, श्र

प्रकाशन
२. कश्मीर
बोलचाल ।
एक परिचय

६. गल्प
दिन) ।
बिहारी र
रुबाइयाँ,
गजलांजलि
योजना, शी
हमारा सा
पद्य संकल
गद्य - पद्य

खोया चेहरा

(सन् १९६२ ई० से सन् १९६९ ई० तक की कुछ कविताएँ)

★

पृथ्वीनाथ मधुप

प्रकाशक :

कपूर ब्रदर्स, लालचौक, श्रीनगर

कापीराइट :
पृथ्वीनाथ मधुप

●

प्रथम संस्करण :
मार्च १९७३

●

मूल्य :
पाँच रुपये मात्र

●

प्रकाशक :
कपूर ब्रदर्स
लालचौक, श्रीनगर।

●

मुद्रक :
इन्डो प्रिंटिंग प्रेस,
श्रीनगर।

जम्मू - कश्मीर ललित कला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी ने इस काव्य - संग्रह के प्रकाशनार्थ जो आर्थिक सहायता दी है उस के लिए मैं अकादमी का आभार मानता हूँ। इस संग्रह में व्यक्त भावों की किसी भी प्रकार की जिम्मेदारी अकादमी को नहीं।

— मधुप

समर्पित

परम पूज्य पिता

पण्डित नीलकण्ठ शर्मा को

जिन से कविता

पैतृक - सम्पति के रूप में मिली।

पूर्ववचन

अन्तःकरण की प्रवृत्तियों के चित्र का नाम ही कविता है। जब किसी कारण से हृदय के भाव, हृदय में नहीं समाते, तब वे शब्दों का रूप धारण कर बाहर निकल आतें हैं, वही कविता है, चाहे वह पद्य हो अथवा गद्य।

कविता की उत्पत्ति हृदय से है, मस्तिष्क से नहीं। हृदय पर किसी वस्तु का प्रभाव पड़ने से जिन विकारों की सृष्टि होती है, वे विचार कहलातें हैं। हृदय के भावमय उद्गारों का दूसरा नाम ही कविता है।

कविता और मानव संबंध उतना ही पुराना है, जितना पुराना मानव है। कविता मानव जीवन की हिलोर है, इसलिए उसमें जीवन की विभिन्न हिलोरों का अंकन होना ही चाहिए। हम कविता में जीवन के क्षण–क्षण के राग विराग, पल - पल के आनन्द विषाद, तृष्णा और तृप्ति के दर्शन पाते हैं। कविता जीवन की व्याख्या है।

साहित्य के रूप में ही हम समाज के दर्शन करते हैं। इतिहास पढ़ने से किसी समाज का या देश का केवल बाहरी परिचय मिलता है, किन्तु साहित्य के अध्ययन से उस समाज या देश का आन्तरिक दर्शन प्राप्त होता है। वह हमारे बहुत कुछ निकट आ जाता है।

'खोया चेहरा' श्रीनगर (कश्मीर) निवासी संवेदनशील कवि पृथ्वीनाथ मधुप का एक सुन्दर काव्य-संग्रह है। कवि की हृदय वीणा पर जब जैसी स्थिति में जैसा आघात पड़ा, सुमधुर स्वर में फूट पड़ा। इस संग्रह की कविताओं में इसलिए स्वाभाविक उच्छवास के दर्शन होते हैं।

आज का कवि केवल कल्पना-जगत का प्राणी नहीं रह गया है। यद्यपि उसका मस्तिष्क आसमान में है किन्तु उसके पैर उस पृथ्वी पर जमें हुऐ हैं, जहाँ शैशव किलकता है, यौवन मचलता है और वृद्धत्व क्षितिज के पार देखता है, जहाँ वैभव की सुरा पीकर कुछ व्यक्ति सुध-बुध खोकर झूमते हैं, तो दूसरी ओर लाखों - करोड़ों लोग अभावों की विभीषिका से सन्तप्त होकर विवशता में पृथ्वी को चूमते हैं। कवि अपनी खुली आँखों के साथ इसी नाना रूप संसार में रहता है। संवेदनशील

होने के कारण वह अपने को सब से पृथक नहीं कर पाता, इसीलिए वह दूसरों के साथ हंसता भी है, रोता भी है। उसका यह हंसना और रोना अनेक प्रकार के प्रतीकों के रूप में प्रगट होता है; एक उदाहरण प्रस्तुत है :–

कचरे पर उगा एक पौधा कहता है —
"मुझे नहीं मिला
किसी भवन का गमला
किसी कोठी का बगीचा
क्योंकि
रंगीन लिफाफे में
क़ैद हो
मैं नहीं बिका।"

उक्त पंक्तियों की तरह ही संग्रह की प्रत्येक कविता अर्थ-गर्भित है और पाठक को बहुत कुछ सोचने के लिए विवश करती है।

इस संग्रह में संग्रहीत रचनाएं कश्मीर में बैठ कर लिखी गई हैं। पार्श्व भूमि के रूप में कश्मीर का सौंदर्य, कश्मीर की परिस्थितियां इन कविताओं में विद्यमान हैं ही, साथही एक हिन्दीतर भाषी हिन्दी कवि की सधी कला और विशिष्ट रचना-शिल्प भी।

हिन्दीतर भाषी किसी साहित्यकार को जब हिन्दी में रचना करते देखता हूँ, तो हर्ष से पुलकित हो जाता हूँ। भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी की सेवा जब हिन्दीतर भाषी भी कर रहें हैं, तब उसका गौरव हिमालय से भी ऊँचा क्यों न होगा?

श्री पृथ्वीनाथ मधुप के इस काव्य संग्रह का हम हृदय से स्वागत करतें हैं और आशा करतें हैं कि कवि अपनी सशक्त लेखनी से मां सरस्वती का श्रृंगार करते रहेंगे।

हिन्दीनगर, वर्धा।
श्रीरामनवमी, १९७३

रामेश्वर दयाल दुबे

कविताएँ

क्रम संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
१.	खोज	१
२.	तुम	३
३.	रस - मज्जन	४
४.	मैं, नव - वर्ष और बधाई	८
५.	आत्म - साक्षात्कार	११
६.	क्यों ?	१२
७.	एक अबूझ पहेली	१४
८.	दूसरा जन्म	१५
९.	रात	१६
१०.	कचरे पर उगे एक पौधे का वक्तव्य	१७
११.	वसन्त	१९
१२.	कहानी का अन्त	२०
१३.	एक प्रश्न	२१
१४.	पूर्णत्व की चाह	२२
१५.	धूप : हिमपात के बाद की	२६
१६.	भूत और वर्तमान	२७
१७.	आश्चर्य	२९

क्रम संख्या	शीर्षक			पृष्ठ संख्या
१८.	भाषण, नारे और इश्तिहार		...	३०
१९.	बदलते कैलेण्डर, अनुत्तरित प्रश्न		...	३१
२०.	एक महान् आश्चर्य	...	...	३५
२१.	काला जुलूस ...	...	...	३६
२२.	रहस्योद्घाटन	...	...	३९
२३.	अवगाह ...	...	...	४०
२४.	पीछा ...	...	...	४२
२५.	ऊब का एक गीत	...	...	४४
२६.	उठो !	...	...	४६
२७.	फिर वही सब	...	...	४७
२८.	गीत : अपने सन्दर्भ का	...	...	४९
२९.	दो बिम्ब	...	...	५१
३०.	... ... खडा बाज़ार में	...	...	५४
३१.	सत्य से साक्षात्कार	...	...	५५
३२.	प्रश्न तुम से	...	...	६०
३३.	बार - बार	...	...	६१
३४.	एक मरसिया	...	...	६२
३५.	टटकी राहों की डोर	...	...	६३
३६.	खो गया	...	...	६४
३६.	खोया चेहरा	...	...	६७

खोज

जिस पर खड़ा हूँ
उस धरा पर,
जो लपेटे हूँ
उस हवा में,
जहाँ तक—
यात्रा में समर्थ है—
नज़रें
धरा - गगन की
उस मिलन- रेख तक,
प्यास बुझाने वाले
जलाशयों की बूंद बूंद में,
किरण - ताप
और
उजास में,
दोस्तों की
बेझिझक बात में
कहकहों में,
गुरुओं की
गम्भीर
सारयुक्त
गिरा में,
कटीले सैन में.

लिपस्टिक - रंगी मुस्कान में,
नर्म गुदगुदे मादक गन्ध युक्त—
परस में,
खोज की
हर कहीं
नहीं मिला तेरे लिये
मेरे टीसते चपल हठीले मन !
एक रत्ती का
सौवाँ ... हज़ारवाँ ... लाखवाँ ...
भाग भी
सकून ।

तुम

तुम :
पोशनूल* का गान
कि जो —
हिमकाल के अवसान पर
पुष्पश्रृंगारित
बदाम की डार के ऊपर
असिय - स्वन में
गया गाया ।

तुम :
चिनार की—
वायु
औ'
छाया ;
जेठ के —
तपते दिवस की
दोपहर में,
मैंने
तुम्हें
पाया ।

K. P. SABHA ... LIBRARY No .... Date........ JAMMU

---

*कश्मीर देशीय कोकिला विशेष ।

रस – मज्जन

प्यार है मुझे
चिनार की ममतालु छाया
पोशनूल, बुलबुल, कोयल ... ... के
सरस, मर्मस्पर्शी —
गीतों से ।
बहते झरनों के महाकाव्य
चीड़ों का रसविभोर हो सिर हिलाना
पतों का दाद देते ताली बजाना
मुझे बहुत भाता है ।
गजगामिनी आधुनिका—
मधुर वासन्ती हवा
मदिर भीनी खुशबू से नहा
जब —
अधखिली कलियों को छेड
डल के उर को तरंगित करती
हाउसबोटों की —
खिडकियों पर लटकते
झीने, उजले पर्दों को
लहरा,
हटा,

किसी कमलमुखी की चुन्नी को
सरका
तथा—
उसकी गाल चूमती
घुँघराली लट को
लहरा लहरा जाती है
और

दूर, बहुत दूर—
शिकारा खेते किसी मल्लाह को
सुरीले कण्ठ से छेड़ी
लोक-गीत की एक कड़ी
मेरे श्रवणों से टकरा देती है
उस वेला—
मैं आनन्द के अथाह सागर में
डूब डूब जाता हूँ।

नसीम का समीर
शाही चश्मे का नीर
गुलमर्ग के महकते फूल
सिन्ध, लिद्दर के सुरम्य कूल
लोलाब का मोहक यौवन
और बाँकपन
सीधी स्वच्छ सड़क के

दोनों ओर खड़े
पहरेदार से सफेदे
मुझे बहुत भले लगतें हैं।
कार्तिकी ज्योत्स्ना - स्नात
केसर-कुसमों की लहराती अनन्त सुषमा
झुकी डालियाँ
पक्के अम्बरी सेबों की
और उन की ललाई, बास ......
और चिनरों के दहकते लिबास
मेरे हृदय-सन्तूर की तारों को
झंकृत कर देतें हैं।
न जाने मेरे दिल में
पैदा करता है
—कौन सी बात
पहला हिम - पात !
मैं घंटों, घंटों और घंटों
हिम - पुष्पों,
नाच नाच कर
गिर रहे रूई के गालों
तथा सड़कों
छतों, पार्कों......में बिखेरी गई
सघन चाँदनी की बोरियों को

हेरता, हेरता बस हेरता ही रहता हूँ।

दूर, बहुत दूर
ध्यान मग्न
श्वेत जटा - जूट बाँधे—
पर्वत - मुनियों का दरस
शाहिहमदान, हारी पर्वत, खीरभवानी ......से—
आती, मिश्रित—
कुरआन व वेद ऋचाओं की पावन ध्वनि
धूप और अगरबत्तियों की सुवास
दीप और शम्मा की उजास
हर अधर पर अनायास
लल्ला और नुन्दऋृषि के 'वाख'
थिरकाती
मेरी आत्मा को
प्रफुल्लता प्रदानती है।

मैं, नववर्ष और बधाई

काँच की
मेरे अस्तित्व के ऊपर
एक और तह चढ़ी
घुटन बढी
धड़कन भी
टिकटिकाती रही—
सिरहाने की घड़ी।
दीवार पर लटका
कैलेण्डर नया
हंसने लगा व्यंग्यभरी हंसी!
तुम्हारा
वह दिपता चेहरा
शीत से सिकुडे, पियराये—
साग के पत्ते-सा लगा।
[तीन - तीन बच्चियों की माँ !!!]
समय बीत रहा
आयु - सोपान की पीडियाँ
चढ़ रहीं हैं
बेटियाँ
और यहाँ—
पेट से ही फुर्सत कहाँ ?"

— तुम्हारी यह आवाज़
मग में कौंधी :
कचौटने लगी !
और,
याद आई
जननी की
यह बात भी :
हर आने वाला वर्ष
जाने वाले साल को
हमारी आयु का —
एक संवत्सर दे जाता है।
और ....।

आज
दीवारों की उठी सफेदी,
खूँटियों पर लटके—
लत्ते
एक बाज़ूहीन लंगड़ी कुर्सी
सूनी आँखें फाड़े—
तुम्हारा चूल्हा,
घिसे, खाली बर्तन,

अनचुकाई —
बिलें,
और ... . ।
एक के बाद एक,
कभी समवेत में
कुछ कहतीं हैं;
चिल्लातीं हैं !!
इस कचपच से
कानों के पर्दे
फटे जा रहे।
[घड़ी टिक-टिकाये
और कैलेण्डर हंसते जा रहें हैं ।]
दब रह हूं मैं
काँच के भार के नीचे।

× × × ×

एक सुन्दर —
बहुरंगी बेल-बूटों वाले
लिफाफे में
दोस्त का तार आया है —
"नया साल मुबारिक !"
! ... !! ... !!! ... !!!!

आत्म – साक्षात्कार

हृदय अर्थों से ठसाठस भरे
शब्दहीन ज़बान लिये—
प्याज़ - सा पर्तीला
मरुथल ओढ़े
कृत्रिमता का चश्मा उतार
जिसे मैं देखता हूँ
बार बार
वह मैं ही
मैं ही तो होता हूं !!!

क्यों ?

आशा ओढ़े

मुखर आँखें

एक टक

जब ऊपर—

(उस दाता की ओर) हेरने लगीं

स्वतः

आँजुरी

विश्वास (?) से बन्धी

हर धक् धक्

दिल की —

मौन प्रार्थना बनी

क्यों —

पलकों पर —

शून्य सुस्ताने लगा !

मुट्ठियों में

अन्धेरा बसा !!

उर

गीदड़ों के क्रन्दन से

अनुगुञ्जित
खण्डहर का
भुतहा कमरा बना ???

एक अबूझ पहेली

नज़रें
इसकी उस की
और
तुम्हारी :
अलग अलग सभी।

मेरी नज़र में
तुम्हारी नज़र में भी
मैं
इक अनबूझ
पहेली हूँ
मुझे लगता !

दूसरा जन्म

एक पौधा —
खण्डहर में उगा !

कुछ लेटीं
कुछ खड़ी
किन्ही हिंस्र पशुओं के नखों से चिन्हित—
दरारदार भीतें
जिन पर—
बीटों के चिन्ह
पोपले झुर्रीदार निर्जीव गालों पर
सूखे आँसूँ से। ... ...

—उरके खण्डहर में
कितने भावों को देते जगा !
खण्डहर में पौधा उगा।

रात

अदृश्य पुरुष
कोई —
चिनार के पत्तों के
कोइलों के
एक बहुत बढ़े
दहकते —
ढ़ेर पर
छिड़क रहा है
पानी !

कचरे पर उगे एक पौधे का वक्तव्य

मैं :
पिछवाड़े के गलियारे में
कचरे पर उगा
एक पौधा।
नहीं मालूम मुझे
यूरिया, सुपर फॉस्फेट
या ... ...
का स्वाद !
नेह-किरण के परस की भी
नहीं कोई अनुभूति।

लम्बे काले साये
सीलन,
दुर्गन्ध,
कीड़ों की कुलबुल कुलबुल ... ...
इसी में
मुझे जीता है जीवन।

मैं भी अंकुराया
उसी से

जिस बीज से अंकुराये
बाग़ों के पौधे
(संभवत:)।
क्या नहीं
मैं भी —
वनस्पति-जगत् का एक प्राणी ?

मुझे नहीं मिला
किसी भवन का गमला,
किसी कोठी का बग़ीचा
क्योंकि —
मैं किसी फॉर्फ की उपज नहीं
रंगीन लिफाफे में
क़ैद हो —
मैं नहीं बिका।

वसन्त

वसन्त मेरे लिये
शोकेर्स में सजे
कपड़ों की दूकान के
मोहक रंगों
बेल - बूटों वाले —
लटकते कपड़ों,
बहुत महंगी साडियों जैसा है।
जिन्हें मैं
चाहते हुए भी
खरीद नहीं सकता —
तुम्हारे लिए।

कहानी का अन्त

न हिले
होंठ भी
गाथा सुन मेरी
उस के !!
पर,
देखा
सोता फूटा
शैल - हृदय से !!!

एक प्रश्न

पहाड़ी की ढ़लान पर खडा
झाडियों पत्थरों से घिरा,
अनेक पक्षियों की बीटों से अभिषिक्त,
चींटियों की माला धारे,
अकम्प
विचार - मग्न ठूंठ
तलहटी की
दूब औ'
अंकुरित
पल्लवित
पुष्पित,
वृक्षों की ओर घूर घूर
सोच रहा है
क्या ?? ... ... क्या ???

पूर्णत्व की चाह

नई बस्ती में
रहना चाहता नहीं
ऐसा मत समझो
मेरे दोस्त ! मेरे सहयात्री !
मुझे घिसे
तार-तार हुए
और बासी से
कोई प्यार नहीं।
मैंने —
हर सूर्यास्त को बिदा
और हर सूर्योदय का
स्वागत किया है।
पर जब भी,
मेरे मोत !
तुम्हारी इस बस्ती में आता हूँ
अपने को कटा-सा पाता हूँ !
कभी कबन्ध,
कभी केवल सिर हो जाता हूँ !!

सहयात्री मेरे !
तुम्हारी इस नई बस्ती में
घुटन
टूटन
और ऊब पाता हूं।
घुटन टूटन, ऊब और ... ...
यहाँ के हर चेहरे पर लिखा पाता हूँ
मेरा दिल बैठ-सा जाता है
सिर चकराता है
अपनत्व से अपनापन –
अजनबी हो जाता है !!!

मैं –
नहीं हूँ क़ैद
अन्धेरे कुएँ में –
तुमने मुझे सदा
ग़लत समझा
और प्रचारते रहे
इसी ग़लती को !
तुमने मेरा जीवन जिया नहीं
या भूल गये हो
यदि जिया भी कभी

इसी लिए तुमने–
आधे को पूरे की संज्ञा दी :
क्योंकि अधूरेपन ने
पूर्णत्वज्ञान को तुम्हारे
हर लिया है।

ओ अपूर्ण !
खण्डित !!
कबन्ध !!
मुझे आज के सूर्य मे
घृणा नहीं
और विगत कलने
मेरे मन में
'कुछ' नहीं पाला है
पर,
अधूरापन मुझे
खलता है
सालता है।

सूर्य उगे
(उगता रहे !)

पर,
आकाश वही हो
उसी धरा पर
मेरा स्वागत वसन्त को !
नई बस्ती में—
रहना चाहता नहीं
ऐसा मत समझो
पर,
मेरे मीत !
मेरे सहयात्री !
मुझे पूर्णत्व दो –
पूर्णत्व दो
पूर्णत्व दो !!!

धूप : हिमपात के बाद की

यह कैसा सूर्य उगा !
सभी विधवा डालियों की गोद
कर गया सूनी !!

हंसते श्वेत - फूल
झरे !!!
डालियाँ आँसुओं में नहाईं।
छतें भी
आस - पास की
बहाने लगीं
सहानुभूति में आँसू
टप् ... टप् ... टप् ... ...

भूत और वर्तमान

अभी था
अभी नहीं है।

इस 'था'
और 'नहीं है' के मध्य
जो था
वह नहीं है।

नहीं है के आगे
जो है—
वह क्या है? ... ! ... :

'नहीं है'
'नहीं था' बनेगा।
इस 'है'
और 'था' के बीच
जो था
वह है
वह रहेगा :

('था' 'है' है।)
तो —
कौन 'था'
और
कौन 'नहीं है'? ... ... !!!

आश्चर्य

ज़िन्दगी जंग है
हर मोर्चे पर इस के
बुरी तरह से
हम हारे
हर अस्त्र - शस्त्र का निशान
शरीर पर विद्यमान
साँगा हैं
अपने किस्म के
या
हार के इश्तिहार ?
साँस लेतें हैं
ज़हरीले धुएँ में
विषाक्त घाव रिस्ते
छटपटाहट, दर्द में
पिसतें हैं हम
पिसते !
फिर भी हम जिन्दा हैं !!!

भाषण, नारे और इश्तिहार

पीठ से सटे
उदरों की टीस
आँखों की भाषा बन
जब कराही—
तो मिले भाषण।
हाथ पर धरे हाथ
दिखाने कुछ कमाल
संवारने बिगडी तक़दीर
जब याचना करने लगे
तो उन पर
धर दिये गये नारे।
कुण्ठा, असन्तोष, क्षोभ
जब व्याकुल हो —
भभक उठे
तो उन पर चिपकाये गये इश्तिहार।
भाषण, नारे और इश्तिहार
इन्हीं के भार तले
दब रहे—
कुचल रहे हम सब।

बदलते कैलेण्डर : अनुत्तरित प्रश्न

टिक ... टिक ...
        टिक ... टिक ...
                टिक ... टिक ...

पर, किस पर ?
कोई बात,
कोई आधार —
टिका जाए जिस पर ?

महादानव —
नुकीले सींगों वाले
दाये, बाँये, सामने, पीछे से
अपनी ओर —
आते दिखाई देतें हैं
दौड़ते - से !

मैं
असुरक्षित हूँ !
असुरक्षित हूँ !!
असुरक्षित !!!

घड़ी के बाज़ुओं !
अ - विराम यात्रियों !
किसी को लाये ?
किसी को लाओगे ?
जो —
मेरी आँखों के
अनपढ़े पृष्टों को
पढ़ सके !
धक् ... धक् ...
धक् - धक् ... ...
धक् - धक् ... धक् - धक् ...
— इस भाषा को
अर्थ दे ।
कुछ बोले
मुझे
यह अकेलापन न खले ।

●

टंग जाता है
जब भी
दीवार पर
कैलेण्डर नया

उतर जाता है
मेरा चेहरा,
डबडबातीं हैं आँखें
थर-थराती है देह,
(? ... ?? ... ??? ... ???? ...)
लाल लपटें
चिता को
आसमान छूती सी दीखतीं हैं :
[आगमन
नई उषा का !]
हो जातें हैं
फटने फटने को
कानों के पर्दे
अज्ञात रुदन ध्वनि से :
[मुल्लाह की अज़ान !!]
सामने की
और अन्तर में उगी —
हर बात
प्रश्न - चिन्ह बन
मेरे एहसास के व्यास पर
घूमने लगती है !

[कभी ऐसा होगा
कि –
इन्क्रीमेंट की
सुकल्पित
(पर कमज़ोर)
लाठी टेकता हुआ
जब मैं –
पहुँचूँगा दफ्तर
वहाँ
कर्यरत होंगें
कम्प्यूटर ! कम्प्यूटर !! कम्प्यूटर !!!
(इन्सान का
होगा क्या ???)]

एक महान् आश्चर्य

वसन्त को सिरहाने रख
इन्द्रधनुष ओढ़
जिन किरणों को
चुल्लुओं में ले
मैं —
सप्नो संग सैर की —
योजना बना रहा था
मेरी हथेलियों से
वे कब की
फिसल फिसल चुकीं !
आँखें खुली ।
कमरे का शून्य
और खिड़कियों पर टंगे अन्धेरे
कनबतियों में कुछ कह रहे ।
स्पष्ट सुन रहा मैं भी ।
महान् अश्चर्य
जीता हूँ फिर भी !

काला जुलूस

तमावृत्त
आसमान पर
मंडराते चिमगादड़।
देखतीं
उल्लुओं की आँखें।
कहीं दूर
दैत्याकार
किसी खूंखार पशु की
चीख !!!

हर मुंह
आँख —
बेहरकत, खुली,
साँस रुकी-रुकी,
बौने स्थिर —
ऊपर उठे हाथ
जराफी तरु की फुन्गी से
'कुछ' उतारने को आतुर;
पोलेपन का साथ
टूटी बैसाखियों का आधार ... ...

शंख
अज़ान
या
और कोई ऐसी ही ध्वनि,
आम सभा में दिया
या
रेडियो से प्रसारित—
भाषण,
प्रयोगशालाओं में
कार्यरत मस्तिष्क,
क्लास-रूमों के लेक्चर,
मैत्री,
नातेदारी
खून का संबन्ध,
प्यार,
बात –
यह, वह
विशेष, आम
या यों कहें
कि —
ज़िन्दगी का हर काम

घड़ी की
टिक-टिक टिक-टिक टिक-टिक
के ऊपर
(या
बाहर भीतर)
तम की पर्त पर पर्त पर पर्त
चढ़ाते जा रहें हैं !!

अगिन
काले बुर्कों की भीड़—
विपल, पल, घड़ी, पहर –
चली जा रही
निरन्तर :
अनन्त जुलूस
कलिमा का
इसी में
खो गये हैं –
हम सब ।

रहस्योद्घाटन

मेरी भोली बच्ची
पेन्सिल से
एक टुकड़े पर
कागज़ के
चित्र बनाती है।
        रबर से मिटाती
        फिर बनाती है।
कइयों को रंगती
कुछ को नहीं !!!
        [वे, ये और मैं।]
मेरी शिक्षिका
मेरी आत्मजा !
समझा
अनसमझा सत्य
निगूढ़तम रहस्य।

अवगाह

टीले की –
उगती हरियाली पे
सुख लेता हूँ
गिरती अपने ऊपर
कुनकुनी धूप की
बौछाड़ों का –
प्रात: की,
नीले नभ के विस्तार तले।

इधर
सामने
झीने नाइलोन को
अरुण अरुण
चुन्नी पहने
बादाम की कलिकाओं से
आती हैं–
छींटें –
मुस्कानों की।

उधर,

मीठी, मादक
स्वर - धार —
बरसती है
बुलबुल
कोयल
मधुकर
... ... के —
गुञ्जन को।

पीछा

एक सुढोल उभारों वाली
मोहक छवि
मोती बिखेरती
मेरी आँखों में
आँखे डाल
मेरे सामने से-
मुस्कुराते चली गई !

अनेक फूलों की गन्ध
वातावरण को महकाती
मेरे ऊपर से
पराग उड़ाती चली गई !!

कोई प्यारा प्यारा कुनकुना
नर्म परस
मेरी नस - नस में —
बिजली दौडा कर,
झुरझुरी पैदा कर कहीं खो गया !!!

कहीं दूर
कोई सम्मोहक स्वर लहरी
मुझे बान्ध टूट गई !!!!

भरा प्याला
मेरे होठों से लगते ही फूट गया !!!!

अब
लम्बे दाँतों वाले
उस भद्दे दढियल की
दो लाल आँखें
चिमनियों का —
काला, नीला, भूरा धुआँ
फौलादी छुर्रे की ठण्डाहट
अनेक कर्कश चीखें
कडुवाहट से भरे ड्रम
मेरा पीछा कर रहें हैं
पीछा कर रहें हैं !!!!!!

ऊब का एक गीत

फीका लगता आज
कि जिस में था कल अति आकर्षण
सभी बन्धनों से जाने क्यों उचट गया मेरा मन

सब अधरों की स्मित —
उधार है
ऐसा अनुभव होता
कृत्रिम चमक —
सभा आँखों में
है दिल सब का रोता
पहने सभी मुखौटे लगते
औ' रंगीन लबादे
विषम हो गया है अन्दर बाहर का कितना जीवन !!

धूप कुनकुनो
और चाँदनी
हुई बहुत मैली है
हवा साँस घुटाने वाली
सभी ओर फैली है
पानी की तासीर —

बहुत कुछ बदली-सी लगती है
वर्षा और तरह ही की अब बरसातें हैं ये घन !!!!

ऊब
ऊब बस मिलती रहती
दिन भर
इधर उधर से
दफ्तर, घर, बस, सड़क
न जाने आती किधर किधर से !
थोड़ा सा उन्मुक्त गगन
मुट्ठी भर दूब न मिलती
उमस और सूनापन बनता जीवन अपना क्षण-क्षण !!!!

उठो !

उठो !
इस वैक्यूम से निकलें
शीशे की क़ैद को तोड़ें ।
साँस लें
नये सूरज को न्योतें
मद्धम कालिखपुते—
मनहूस लालटेनों को फोड़ें !

चलो !
तार-तार हुए
टाट की रस्सियों की जकड़न से
पैरों को मुक्त करें
नई राहों पर—
कालीन बिछायें
नयी यात्राएँ वरें !!

आओ !
दूब उगायें
सुरधनु की खेती करें
हवाओं को पुष्प-गन्ध मलें
संत्रास की टिड्डी का अन्त कर
हर क्वाँरी आशा को ब्याहने चलें !!!

फिर वही सब

आँख के आनन्द
दमकते रंग,
मनोहर गन्ध,
एक टटकी सुबह,
पुष्प ओसिल
इत्ता बढ़ा आकाश —
नीला,
बहुत बहुत दूब,
ढ़ेरसारी धूप,
आँजुरभर चाँदनी
और ... ...।

अरे !
शिशु की तरह फुसला
और एक वत्सर
चल दिया !!

[बेरंगी —
वही

सढान्ध,
बासी रात
नुकीले शूल,
काले - घन - घिरा नभ,
उमस,
परती ।]

गीत : अपने सन्दर्भ का

कौन छिपा है मुझ में
जिसने —
मुझ से मेरा सब कुछ छीना ?

मुझ माटी के घट को
क्योंकर
पटका लाकर
चौराहे पर
सालिम रहने पाता कैसे
बिखर गया मैं टूट टूट कर।

किसने कैसे समझ न आता
दूभर कर डाला है जीना।

मैं 'मैं' नहीं रहने पाया हूँ
'मैं' हो गया —
अनेक पराये —
ऐसे में
मुझ को मेरा 'मैं' —
नज़रों में कैसे आजाये

वही साँस ? मेरी ही क्या ?
धड़क रहा मेरा ही सोना ?

देह हृदय—
दोनों ही अब तो
चलती जीवित कब्र हो गये।
दफ़न हुए जातें हैं इन में
क्षण क्षण मुर्दे नये औ' नये —
कितने घुट घुट मर जातें हैं
कितनों को विष पड़ता पीना।

कौन छिपा है मुझ में
जिसने —
मुझ से मेरा सब कुछ छीना ?

दो बिम्ब

बहुत बड़े गिजगिजे
आडू - सी आँखें।
घनी, मोटी, मिली हुई
खडी दाभ - सी भौंहें।
चौड़ा मुंह।
मोटे काले भद्दे होंठ।
बाहर निकले हुए
रक्त - सनी ज़ंग - लगीं कटार - से
... ... दाँन्त।
लपलपाती जीब
गोल करेवे - सा सिर
जिस पर
ठूंठ - से उगे
दो सींग
और
जवासे के शूल - से
बाल दो चार।
पहाड़ की ऊबडखाबड़
मोटाई, ऊँचाई - सा
... ... शरीर।

अपत बूढ़े वृक्ष - सी बाहें ... ... ।
सुनने पढ़ने से
कुछ ऐसा ही
उभरा था
मेरे मन में बिम्ब
मायावी
बहुरूपी मुनिघातक असत्यपोषक
अकारणवैरी ... ...
दानव का।
पर,
सब सुना, पढ़ा
ग़लत हो रहा
आज —
एक नया बिम्ब उभर रहा
पुराने की जगह
सुन्दर चमकीली आँखें –
चश्मे युक्त
सौम्य चेहरा —
क्लीन - शेवड़ क्रीम - पौडर - पुता
अधरों पर खेलती —
मंद मुस्कान,
मधु बतियाँ

सजीला बदन
सूटिड बूटिड
या शुद्ध खादी सजा
या ... ... ।
सभ्य आदात
सुन्दर हैण्डबैग लिये हाथ
जिस में असंख्यों
सुन्दरतम मुखौटे
आकर्षक लबादों के सेट ... ... ।

खडा बाज़ार में

पुरखो !
गुरुओ !
कोसता हूँ आप को
दिन में बार-बार
(क्षमा मेरी धृष्टता करना !)
जो दिये —
संस्कार,
शिक्षा,
यह सब खोटे सिक्के
ठन - ठन गोपाल !
खरीदूं क्या ?
बेईमानी के पर्स में
चापलूसी के खरे खरे नोट
और—
चमचागिरी ... ... की
रेज़गारी दे कर —
क्यों नहीं भेजा
मुझे
इस बाज़ार ?

सत्य से साक्षात्कार

नहीं सम्मानूँगा
न झुक जायेगा सिर ही।
मैं नहीं नास्तिक।
मुझे इस संज्ञा से नहीं
क्रिया से —
सख्त नफरत है।
हाँ,
क्रिया ने संज्ञा को भी —
कर दिया बदनाम।
इन के विशेषण
तुम नहीं मैं जानता हूँ।
इन्हें
देखते ही
मुझे होती है घृणा
लिजलिजे परस से मिचली,
बू से उबकाई।
तुमने
इन्हें लबादे में देखा है
मैंने

लबादा फाड़ कर :
दुनिया भर की
गलीज़ से गलीज़
दुर्गन्ध,
बगुले,
लोमडी,
बिच्छू,
साँप ... ...
— खूंखार जानवर
बदतर
करतें हैं इन में
निवास ।
तुमने —
इनकी नकली सूई
मैंने —
असली कैंची देखी है
सही है ।

× × × ×

उचारतें हैं
राम ! राम !
अल्लाह ! सुबहान !

पढ़तें हैं
गीता, कुरआन
पर, काम ?
हरे राम ! हरे राम !!
फैलाना
चुपके से —
बदबू
झन - झन खन - खन पर
होना कुर्बान
कुतरना
मज़बूत से मज़बूत
संबन्धों के भी तन्तु
दिखना भोले
और
उपदेशना हौले हौले ।

× × × × ×

अन्धी श्रद्धा का —
चश्मा उतार
नज़दीक से
देखो इन्हें

इन के नक़ाब उतार कर
परे फैंक दो
तुम भी
नाक के आगे
रूमाल रखोगे,
बदन में
सुरसुरी अनुभवोगे,
होंठ चबाओगे
मुट्ठियाँ भिंच जायेंगी
आँखें लाल होंगीं
तुम्हारे
अन्दर के—
अन्दर के अन्दर का कोई
निश्चय
तुम्हारी पूर्व भूलों पर
दुत्कारेगा।
अनायास उचारेगी।
जिह्वा तुम्हारी —
गन्दे ! घृणित !! दरिन्दे !!!

× × × × ×

मैं नहीं नकारता

साधुत्व की सत्ता
पर,
मुझे हकीक़त रुचती है
यथार्थ भाता है
और वास्तविकता पसन्द है
मेरी
(बिना चश्मे की) आँखें
होती हैं चार
कटु सत्य से
और नज़रें
जाती है
पर्दे के –
अन्दर के अन्दर के –
अन्दर तक ।

प्रश्न तुम से

खिलेंगे झील में
फिर से कमल।
दूर गाई
मधुर स्वर में
लोक - गीत की कड़ी —
संभाल कर —
अपने कन्धों पर
लायेंगी ऊर्मियाँ फिर।
छप्... छप्... का खेल
खेलेगा पानी
हमारे शिकारे से।
ढ़लता सूर्य भी
घोलेगा सिन्दूर ... ...।
पर,
दुहरायेगा अपने को
वह क्षण ?
बजेगा वह सन्तूर ?

बार - बार !!

सुनहली धूप - भूषित
गन्धाती उजास
ओसिल गुलाब की
खजूर की फुनगी पर उचक
मुस्काती है !
मेरे हाथ आती
उबकाई, उमस मिश्रित —
घिनौना मौन बाँटती -
घुप अन्धियारे से वेष्ठित
काँटों - भरी डार
बार - बार !!

एक मरसिया

अधर्म, असत्य,
अन्याय, असमानता ... ... को
स्याह साँपिनों से
दंशित हरदिशा !
कहाँ है दिन दिपता ?
ईश्वर मर गया !!
दर्द बना
कई लीक - बन्धे लोगों के
कन्धों का
शव उसका।
न उसे
आग को सौंपा गया
न खाक़ को
हाय कोई उत्तराधिकारी भी न उस का ?
तिपूता बेचारा !!!

टटकी राहों की टेर

बस
और न फैलाओ
बासीपन की दुर्गन्ध
तुम्हारी यह पोथिलबातें
सडी लाशें हैं गिजगिजी
इन्हीं से फैला है
अकर्मण्य वृहन्नलत्व
[नहीं तो
हम नीचे और नीचे जाते
और वे —
छूते अनन्त ऊँचाइयों के छोर !!]
ये
बेड़ियाँ, जंजीरें, क़ैद और अवनतियाँ ... ... हैं
न जकड़ जाओ, बन्दहोओ , गिरो, ...
खिड़कियाँ, द्वार खोलो
पर्दे हटाओ
उठो !
धूमवार —
थिगडैल लबादा उतार
भोर किरणों के वसन पहनो
सुनो !
टेर रही तुम्हें टटकी राहें।

खो गया !

खो गया !
कहाँ खोजूं ?
यहाँ,
घनिष्ट संबन्धों के प्यारे बन्धन में
खून के रिश्ते में
परिणय के रंगीन गुलदस्ते की महक में
वात्सल्य में !

यहाँ,
दोस्तों की बेतकल्लुफी में
जान पहचान के मान में, अमान में
बॉस, मातहतों के ऊबड़खाबड
या समानों के समतल म !!

यहाँ ?
कहाँ ?
भीड में ?
मुखौटों और लबादों के जुलूस में ?
पैरों की रौंध में ?
कागज़ी पहलवानियत

या मगरमच्छ के आँसुओं में ?
घड़ी की सूइयों
या केलेण्डर की बदलती तारीखों के
मज़ाक में ... ...

खो गया ! खो गया !!
कहाँ पाऊँ ?
शायद कहीं नहीं !
कहीं नहीं !!

खोया चेहरा

तप्पत करेवे,
अन्धी खाइयाँ
इंच इंच असपाट भूमि
— — — — — — जीवन।
उलझे बुरी तरह से
झाड़ - झंखाड़
— — — — — — परिस्थितियाँ।
यात्री
— — — — — — मैं (?)
मैं :
पुत्र, भाई, पति, पिता
कर्मचारी — सबॉर्डिनेट, अफसर ... ...
मित्र, दुश्मन, गुरु,
खरीदार, किरायेदार,
साहित्यकार, हमसाया, रिश्तेदार ... ...।
चेहरे ! ... चेहरे ! ... चेहरे !!!
— — —— —असंख्य !
टुकडे ... . टुकडे ... ...टुकडे ... .
— — — — — — — अनन्त !!
कौन – सा टुकड़ा मैं ?
कौन – सा चेहरा मेरा ?

K.P. SABHA A...
LIBRARY
No..........
Date..........
JAMMU